शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अक्टूबर 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

शिक्षा और संस्कृति का सह-सम्बन्ध

डॉ. अमिता जैन
सहायक प्राध्यापक
शिक्षा संकाय
जैन विश्व भारती संस्थान
लाडनूं, राजस्थान, भारत

शोध संक्षेप

शिक्षा और संस्कृति का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। शिक्षित व्यक्ति संस्कारित होगा, यह आवश्यक नहीं है, परन्तु संस्कारी व्यक्ति को शिक्षित कहा जा सकता है। आज की शिक्षा ने व्यक्ति को सूचनाओं से भर दिया है। नैतिक मूल्यों को पढ़ाया भी जा रहा है, परन्तु उन मूल्यों का जीवन में प्रवेश नहीं हो रहा है इसलिए मनुष्य समाज दुःखी दिखाई देता है। शिक्षा को आचरण में लाने से संस्कृति का निर्माण होता है। प्रस्तुत शोध पत्र में इसी आधार पर शिक्षा और संस्कृति में सह-सम्बन्ध स्थापित किया गया है।

प्रस्तावना

ज्ञान से पवित्र सृष्टि में और कुछ नहीं है। 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।' वेद कहता है कि ज्ञान और ब्रह्म पर्यायवाची हैं। शंकराचार्य भी यही कहते हैं कि ब्रह्म ही ज्ञान है। ज्ञान का आधार विद्या है। शिक्षित व्यक्ति ही किसी देश की संस्कृति और सभ्यता है, क्योंकि ज्ञान व्यक्ति को मिथ्या दृष्टि से मुक्त कराता है। जीवन तथा ईश्वर में आस्था पैदा करता है। समाज विरोधी तत्त्वों को ज्ञान को प्रभाव से दबा देने की शक्ति प्राप्त करता है। व्यक्ति स्वयं से परिचय करके ही स्वतंत्र हो सकता है।

संस्कृति शब्द के सम्+कृति दो मुख्य भाग हैं। सम् एक भाव है कृति नाना भाव है। कार्य का ही नाम कृति है। सम् की कृति ही संस्कृति है। एक की अनेकता ही संस्कृति है। 'एकं ज्ञानं ज्ञानम्' -'विविधं ज्ञानं विज्ञानम्' कहा गया है। अनेकता में एकता ज्ञान का विषय है, एक से अनेक कैसे होते हैं - यह विज्ञान का विषय है। ज्ञान परा विद्या है, विज्ञान अपराविद्या है। इन दोनों का स्वरूप ही संस्कृति कहलाता है।

हमारे अध्यात्म के चार भाग है - आत्मा, मन, बुद्धि और शरीर। शरीर और बुद्धि शिक्षा में तथा मन और आत्मा धर्म के विषय बन गए। शिक्षा धर्म निरपेक्ष हो गई। तब व्यक्ति स्व-धर्म की पहचान कहाँ सीखेगा। शिक्षा के मूल धरातल अधिदैविक, अधिभौतिक एवं आध्यात्मिक तो खो ही गए। व्यक्तित्व विकास पीछे छूट गया। योग-क्षेम की परिभाषा ही बदल गई। ज्ञान छूट गया, विज्ञान रह गया। ब्रह्मा छूट गया, माया रह गई। सम् छूट गया कृति रह गई। यानि संस्कृति खण्ड-खण्ड हो गई।

परिभाषा के रूप में ब्रह्म की सम् रूप आंशिक कृति 'कृति' है तथा पूर्णकृति 'संस्कृति' है। विश्वेश्वर की समष्टि रूप विश्व संस्कृति के अव्यक्त, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी चार अवयव माने

गए हैं। मानव ही विश्व में ऐसा संस्थान है, जिसमें इन चारों कृतियों का सम् समन्वय हो रहा है। यही मानव की सांस्कृतिकता का मूल बीज है। विश्व का अव्यक्त भाग मानव में भूतात्मा है, सूर्य भाग बुद्धि, चन्द्र भाग मन तथा पृथिवी भाग शरीर है। इनका आधार पांचवां ईश्वर अव्ययात्मा ही इन चारों को सम् भाव में रखकर मानव को संस्कृति का रूप प्रदान करता है।

आज की अधिकांश शिक्षण संस्थाएं अनुदान आश्रित हैं। अनेक सीमाओं और राजनीतिक समीकरणों में बंधी है। यहां तक कि पाठ्यक्रम में पुस्तकों का चयन भी अन्यत्र ही तय हो जाता है। वे ही नीतियां बनाते हैं। शिक्षाविद् मौन रहने को विवश हो गए हैं। इसमें शिक्षकों, साहित्यकारों, मनीषियों का आदर कम होता गया है। शिक्षकों के सरकारी सम्मान भी राजनीति के शिकार हो गए हैं।

शिक्षा देना (विद्या दान) ग्रहण करना दोनों ही हमारे यहाँ धर्म की श्रेणी में आते हैं। अतः पात्रता एवं परम्परा का निर्वाह अनिवार्य है। महादेवी वर्मा बनारस में वेद पढ़ने गई, तब स्त्रियों को वेद नहीं पढ़ाया जाता था। इनके लिए कक्षा में पर्दा लगाया गया। पर्दे के पीछे बैठकर महादेवी जी ने वेद अध्ययन किया। बिना यज्ञोपवीत धारण किए व्यक्ति को वेद की शिक्षा नहीं दी जा सकती थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रोफेसर सीताराम जी को जब कार्य सौंपा, तो वे तैयार ही नहीं हुए। बाद में उन्हें मना तो लिया गया, किन्तु वे परम्परा पर अड़े रहे। कक्षा से बाहर आते ही गंगा किनारे जाते, सिर मुंडवाकर गंगा स्नान करते, तब घर जाकर खाना खाते थे। ज्ञान ग्रहण पूजा कार्य था, शिक्षक पुजारी। तब लोग शिक्षक के चरण छूते थे। गुरू के लिए कबीर ने लिखा है -

हर घट मेरा साईंया, सूनी सेज न कोय।
वां घट की बलिहारियां, जां घट परगट होयः।।

गुरू में ही ईश्वर का पाठ्यक्रम कहा गया है। नीतिशास्त्र में भी मन की दो दिशाएँ कही है। एक विद्या, दूसरी अविद्या। एक ओर तो विद्या से विवाद बढ़ता है, तो दूसरी ओर ज्ञान। एक ओर धन से मद बढ़ता है, तो दूसरी ओर दान।

आज शिक्षा जीवन को जीने योग्य नहीं बना सकती। वह ब्रह्म का पर्याय नहीं है। उसमें रस, माधुर्य, संस्कार देने की क्षमता अथवा अच्छा इंसान बनाने की ताकत नहीं है। डिग्री या नौकरी के आगे कुछ नहीं है। सभ्यता और संस्कृति तक नहीं। शिक्षित अधिक दुःखी दिखाई जान पड़ते हैं। जीवन की रसमयता ही विद्या का योग है। यही परा विद्या कही जाती है। यही संस्कृति का मूल तथा व्यक्तित्व एवं देश की पहचान बनती है।

शिक्षा, ज्ञान, वेदशास्त्र आदि को योग माना गया है। आज की शिक्षा का 'उपयोग' किया जाता है। किसी भी फसल में खाद-पानी का तो उपयोग होता है, किन्तु हवा और धूप का योग ही होता है।

शारीरिक सौन्दर्य, मानसिक वैशिष्ट्य, बौद्धिक वाग्शक्ति को व्यक्तित्व नहीं कहते। इन तीनों को मर्यादा में रखने वाले आत्म स्वरूप की अभिव्यक्ति ही व्यक्तित्व है। इसी को मानवता कहते हैं।

आज की आवश्यकता है अध्यात्मवाद को पुनः जीवित करना। ज्ञान की गहनता का अनुभव किया जाए। आज की समस्याओं का समाधान भी पुरातन साहित्य और स्वाध्याय से करने का उपक्रम किया जाए। नया समाज विज्ञान एवं ज्ञान का समन्वित स्वरूप तैयार हो। योग के नए स्वरूप भी खोजने चाहिए। ब्रह्माण्ड और स्वयं में एकलयता स्थापित करने की आवश्यकता है।

संस्कृति में हमें उस प्रज्ञा का दर्शन होता है, जो कठिन समय में हमारी मदद करती है। वेद की कविताओं में मौलिक, प्राणिक और मानसिक स्तर के वे अनुभव अंकित हैं, जो हमें अध्यात्म में ले जाते हैं। शरीर, मन और प्राण से परे भी एक सत्ता है, जहाँ केवल प्रकाश है, आनन्द है। वेद एक बात यह भी कहते हैं कि कुछ भी सिखाया नहीं जा सकता। व्यक्ति स्वयं के भीतर से ही सीखता है। यही वास्तविक ज्ञान है, सत्य है। इसी का सहज रूप विकास है।

निष्कर्ष

शिक्षा का मूल लक्ष्य तो व्यक्तित्व का विकास, मूल्य आधारित समाज का निर्माण ही है। स्वयं का आकलन करने की क्षमता प्राप्त करना है। नर से नारायण बनने का रहस्य जान लेना है। शास्त्र एवं संतुलित जीवन जीने का मार्ग समझना है। सुखी जीवन का अर्थ है आध्यात्मिक संतुलन का बने रहना। यदि मन बुद्धि शरीर में कोई कमजोर है तो जीवन अशान्त और क्लान्त हो जाता है। प्रकृति हर व्यक्ति को एक विशिष्टता देकर पैदा करती है। शिक्षा सबको एक जैसा बना देती है। सबकी विशिष्टताएँ लुप्त हो जाती है। हमारा अधिकांश जीवन प्रकृति चलाती है। धूप है, जल है, चाहे पृथ्वी है। ये सब हमको चलाते है। हम एक दूसरे से बातचीत करते है, मनोभावों का आदान-प्रदान करते है, ये भी हमारा निर्माण करते है। हम खुद जितना निर्माण अपना करते है उससे ज्यादा निर्माण हमारे आदान-प्रदान करने की पद्धति पर पर जुड़ा हुआ होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. रूहेला, सत्यपाल (2006) विकासोन्मुख भारतीय समाज में शिक्षक और शिक्षा, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा

2. त्यागी, गुरूशरण, रवत, मृदुला, सक्सेना, स्वाति (2006) शिक्षा के सिद्धांत, विनोद पुस्तक मंदिर आगारा

3. भाटिया, के. के. (2006), शिक्षा का दर्शनशास्त्रीय स्वरूप, कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना

4. पाण्डेय, रामशकल (2007) शिक्षा के सिद्धान्त, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

5. ओड, के, लक्ष्मीकांत (2008) शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

6. कोठारी, गुलाब (2016) मानस - 10 (संस्कृति और सभ्यता) पत्रिका प्रकाशन, जयपुर